International Journal of Applied Research 2016; 2(3): 140-142

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(3): 140-142
www.allresearchjournal.com
Received: 25-01-2016
Accepted: 27-02-2016

डॉ. मोहित किशोर भटनागर
दर्शन शास्त्र विभाग,
सी.एम.पी.कॉलेज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

Correspondence
डॉ0 मोहित किशोर भटनागर
दर्शन शास्त्र विभाग,
सी.एम.पी.कॉलेज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

श्री बल्लभाचार्य के दर्शन में पुष्टिमार्गीय अवधारणा

डॉ. मोहित किशोर भटनागर

सार
भारतीय दर्शन में वेदान्त परम्परा में शुद्धाद्वैत दर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है इसका प्रमुख कारण इसकी पुष्टिमार्गीय अवधारणा जो शुद्धाद्वैत दर्शन में तत्त्वमीमांसीय अवधारणा में ईश्वर आत्मा और जगत के निरूपण में भक्तिमार्ग को अपनाते हुये इसके प्रवर्तक आचार्य बल्लभाचार्य जिन्होंने इसे तार्किक और धार्मिक धरातल पर दर्शन के इन कठिन प्रश्नों को जन साधारण के लिए प्रस्तुत किया वह तत्कालीन परिस्थितियों और सम्प्रति प्रासंगिक हैं। पुष्टिमार्गीय अवधारणा में प्रमुखतः श्री कृष्ण के बाल रूप को भक्ति मार्ग के रूप में रेखांकित किया है इनके प्रमुख सिद्धान्त जैसे जीव ईश्वर सम्बन्ध जगत् और आत्मा विषयक प्रश्न तथा मोक्ष की अवधारणा का धार्मिक और भक्ति के आधार पर अवलंबित उपरोक्त सिद्धान्त के प्रमुख विन्दु अवश्य द्रष्टव्य हैं– श्री वल्लभ नें ब्रह्मवाद सिद्धान्त की सिद्धि अनेक उदाहरण और कृष्ण लालाओं के माध्यम से प्रमाणित की। ब्रह्मवाद के दो पहलू हैं– 1. परिणामवाद, 2. विकृत परिणामवाद। ब्रह्मवादी भी अविकृत परिणाम वाद ही है। इन्होंनें माया को ब्रह्म की शक्ति माना। इन्होंने जगत और ब्रह्म का शुद्ध अद्वैत और मायारहित अभेद स्वीकार करते हैं ब्रह्म का अधिभौतिक स्वरूपद जगत है अतः ब्रह्म और जगत अभिन्न हैं। परब्रह्म श्रीकृष्ण का सच्चिदानन्द स्वरूप है इसमें सत्, चित् और आनन्द ये तीनो गुण मुख्य रूप से विद्यमान हैं। ये पूर्ण हैं असीमित है, इनकी गणना नहीं की जा सकती।
श्री बल्लभाचार्य जी नें अपने चारों प्रमाणों के आधार पर अपने सिद्धान्त को 'ब्रह्मवाद'अथवा 'शुद्धाद्वैत' के नाम से घोषित किया व्यावहारिक दृष्टि से प्रेम लक्षणा भक्ति से प्रतिपादित होने के फलस्वरूप इसे 'पुष्टिमार्ग' भी कहा जाता है जो कृपा का मार्ग है–
'पोषणं तदनुग्रः' इस भागवत् उक्ति की चरितार्थता को सिद्ध करता है। प्रभू की प्राप्ति किसी साधन विशेष द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती है, श्री कृष्ण की शरण में कोई भी जीव ब्रह्म संबन्ध द्वारा जा सकता है। ब्रह्म संबन्ध के पश्चात् सर्वदोष नष्ट होकर उसके अहंता–ममता के बंधन भी दूर हो जाते हैं उसमें अनन्यता दीनता तथा स्वाभाविकता विकसित होने लगती है। समर्पित भावना जागृत होती है और सेवक धर्म दृढ़ होने लगता है। आचारों परमो धर्मः या आचारो प्रथमो धर्मः। का आत्मविश्वास होने लगता है। पुष्टिमार्ग की यही परम उत्कृष्टता है। 'मूढ़ा अपि वैष्णवः विष्णुगतिः जानन्ति, न पुनर्निपुणा अप्यन्ये।

खोजशब्द : बल्लभाचार्य, पुष्टिमार्गीय अवधारणा

प्रस्तावना
''भारतीय वैदिक परंपरा के सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादक रूप शुद्धाद्वैत दर्शन में विशेषतः ध्वनित होता है जिसमें धार्मिक संस्कृति के गरिमामय स्वरूप का दर्शन होता है इसी संप्रदाय विशेष में वैष्णव संप्रदाय के अंतर्गत श्रीमद् वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित भक्ति मार्ग 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है जो साक्षात् प्रभु लीला श्री कृष्ण की आज्ञा से जीवों के उद्धार हेतु प्रकट किया गया है।
श्री सर्वोत्तम स्तोत्र ग्रंथ में श्री बल्लभ को 'साकार बह्मवादैक स्थापको' कहा है। अर्थात् श्री वल्लभ साकार ब्रह्मवाद के स्थापक हैं। श्री बल्लभाचार्य के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म ही जगत का उपादान और निमित्त दोनों कारण हैं। उदाहरणार्थ– कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है तो मिट्टी घड़े का उपादान कारण है और बनाने वाला कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है। किन्तु जड़ जगत और चेतन जगत के निर्माण में दोनों प्रकार के स्वयं ब्रह्म ही हैं। ब्रह्म ही जगत रूप में हुआ और ब्रह्म द्वारा ही जगत की रचना है। अतः यह सिद्धान्त ब्रह्मवाद कहलाता है अर्थात ब्रह्म ही जगत रूप में है और ब्रह्म ही जगत का रचयिता है।
प्रश्न उठता है कि ब्रह्म द्वारा यह कैसे सम्भव हुआ? ब्रह्म अनन्त शक्तियों वाला है। ब्रह्म की कुछ मुख्य शक्तियों को वर्णित किया गया है।[1]

श्रिया पुष्टया गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्यै लयोर्जया ।
विद्याविद्यया शक्त्या माययाच निषेवितम्।।

अर्थ–लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, उर्जा, विद्या–अविद्या (जीवों के मोक्ष बंधन में कारण रूपा बहिरंग शक्ति) और माया आदि शक्तियाँ उनकी; परब्रह्म कृष्ण की सेवा करती रहती हैं। इन शक्तियों में प्रथम 6 शक्तियाँ तो श्री, बल, ज्ञान, ऐश्वर्य, यश, वैराग्य–ये षडैश्वर्य रूप शक्तियाँ ही हैं। वे अपनी इच्छा मात्र से जो भी कुछ करना चाहें कर सकते हैं, वे सब कुछ रूप में बनने और बनाने की सामर्थ्य रखते हैं। वेद श्रुतियाँ इन बातो का प्रमाण हैं। 'सः अकामयत्' उसने इच्छा की। 'एकोहं बहुस्यां प्रजायेय' मैं एक से बहुत हो जाउँ। सृष्टि रचना करूँ। 'तदात्मानं स्वकुरुत' उसने स्वयं अपने आप ही अपने को अनेक रूपों में प्रकाशित किया। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' जिससे ये सब भूत, पदार्थ, जीव–जड़ जगत और जीव जगत पैदा होते हैं।

श्रीमद्भागवत् में अनेक स्थानों पर परब्रह्म श्रीकृष्ण द्वारा सृष्टि–रचना के प्रसंग मिलते हैं। प्रभु ने इच्छा की–महत्त्व उत्पन्न किया। उससे त्रिविध अहंकार की उत्पत्ति हुई। आदि–आदि। ब्रह्मा के मोह का वर्णन है।[2]

श्रीबल्लभ के 'ब्रह्मवाद' सिद्धान्त की परिपुष्टि में शास्त्र सम्मत् अनेक उदाहरणों और कृष्ण लीलाओं का सिद्धान्त निर्विवाद और प्रमाणित है। इसी ब्रह्मवाद सिद्धान्त का एक और दार्शनिक पहलू है– परिणामवाद, उसके दो भेद– विकृत परिणामवाद और अविकृत परिणामवाद, का भी दिग्दर्शन कराते हैं– मूल कारण पर ब्रह्म नाना रूपों में कार्य रूप हो जाता है। यह परिणामवाद है। जैसे मिट्टी से घड़ा, मटकी आदि। स्वर्ण से नाम रूप भेद से अनेक प्रकार के आभूषण–अंगूठी, हार, कुण्डल आदि। दूध से दही आदि। ये भी परिणामवाद सिद्धान्त के ही दर्शन हैं।

उपरोक्त उदाहरणों में दो प्रकार के उदाहरण लक्षित होते हैं–दूध कारण है, इस कारण का परिणाम दही कार्य है। दूध दही रूप कार्य में परिणत हो जाता है। किन्तु इस उदाहरण में दूध में विकार आ गया अब कार्य रूप दही, कारण रूप दूध का मूल स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता यह। विकृत परिणामवाद का उदाहरण है।

मूल कारण ब्रह्म जब नाम रूप भेद से अनेक कार्य रूपों का धारण करता है तो मूल कारण ब्रह्म में कार्य का प्रकाश करते हुए भी कोई विकृति नहीं आती, जैसे स्वर्ण से बने गहने तो भी स्वर्ण रूप कारण में कोई विकार नहीं आ पाता। गहने वापस स्वर्ण रूप में आ सकते हैं क्योंकि वे स्वर्ण रूपी ही हैं। संक्षेप में कहें तो मूल कारण नाना कार्य रूप हो जायें तो भी कारण में किसी प्रकार की विकृति नहीं आती यह सिद्धान्त 'अविकृत परिणामवाद' कहलाता है।

यदि दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो नाम रूप, जीव–ईश्वर, कारण कार्य शुद्ध ब्रह्म है। मायिक नहीं है। वह सर्व शुद्ध, मायारहित, अद्वैत, अभेद है।

मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्युते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्।।[3]

माया स्वयं ब्रह्म की शक्ति है। माया ब्रह्म से अलग स्वतंत्र सत्ता नहीं है। मायावादियों ने जगत का निमित्त कारण को ब्रह्म को ही माना किन्तु उसका उपादान कारण माया को माना, ब्रह्म को नहीं।

श्रीबल्लभ इस मत से सहमत नहीं हैं। मायावादी ब्रह्म को सत्य मानते हैं और जगत को परमार्थतः मिथ्या मानते हैं। इसे स्वीकार न करते हुए श्रीबल्लभ जगत और ब्रह्म का शुद्ध अद्वैत, माया रहित अभेद अंगीकार करते हैं। ब्रह्म का आधिभौतिक स्वरूप जगत है, अतः ब्रह्म और जगत दोनों रूप अभिन्न हैं। ब्रह्मसूत्रकार श्री व्यास जी भी 'तदनन्यत्व' कहकर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

साक्षात् श्रीकृष्ण के वाक्य 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही ब्रह्मवाद का ही प्रतिपादन करती है–

अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।[4]
वासुदेवः सर्वमिति.....[5]
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम्।
ब्रह्मैवलेन गन्तर्व्य ब्रह्मकर्म समाधिना।।[6]

(मै सम्पूर्ण जगत का प्रभव और प्रलय हूँ अर्थात् समस्त जगत का मूल कारण हूँ। सब कुछ वासुदेव ही है।

जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किए जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले पुरुष द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।)

इस प्रकार के ब्रह्मवाद के अनेक प्रतिपादक श्लोकों से गीता भरी पड़ी है। जगत भगवान का अविकृत परिणाम रूप कार्य ही है, ब्रह्म की ही रचना है, वही जगत का उपादान और निमित्त दोनों ही कारण हैं और इसलिए वह ब्रह्मरूप ही है तो निर्विवाद रूप से जगत की सत्यता भी प्रतिपादित हो जाती है। ब्रह्म सत्य रूप है। जगत भी वही ब्रह्मरूप होने से सत्य है। मायावादी जगत को मायारूप होने से मिथ्या बताती है क्योंकि वे जगत का उपादान कारण स्वतंत्र रूप से माया को मानते हैं ब्रह्म को नहीं ब्रह्म को तो मायावादी जगत का मात्र निवित्त कारण ही मानते हैं।

श्रीवल्लभ जगत और संसार में स्पष्ट भेद मानते हैं। जगत परब्रह्म की रचना है जबकि संसार जीव की परिकल्पना है। जीव प्रभु का विस्मरण कर, प्रभु की रचना–जगत की प्रत्येक वस्तु को अज्ञान के कारण अपना मान लेता है। और उनसे आसक्ति कर लेता है, फिर उनके संयोग में सुख और वियोग में दुःख अनुभव करता है। अविद्या दूर होने पर वास्तविकता का अनुभव कर, प्रभु की वस्तु उसी की मान, उसी की लीला–हेतु मान सेवा में ही विनियोग कर अपने मनः कल्पित संसार को मिटा सकता है, उसका नाश कर सकता है।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण जीव का स्वरूप बताते हैं–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतःसनातनः।[7]

जीव सृष्टि में जीवत्व को प्राप्त हुआ यह सनातन (अनादि) जीव मेरा ही अंश है। ब्रह्मसम्बन्ध मंत्र में भी जीव उस परम्ब्रह्म का अंश प्रतिपादित होता है।

अंश होने से जीव अणु भी है और उसमें भगवान के सत् चित् स्वरूप प्रकट हैं जबकि अविद्या के परिणाम स्वरूप भगवान का आनन्द अंश तिरोहित हो गया। पुष्टिमार्ग जीव में उसी आनन्द अंश का आविर्भाव करता है। जैसे अग्नि से चिंगारियॉ प्रगट होती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से जीवों का स्फुलिंग हुआ। भगवान ने योनिज सृष्टि की शक्ति तो जीवों को बाद में ही दी है।

आनंदांशाभिव्यक्तौं तु तत्र ब्रह्माण्डकोट्यः।
प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत्।

इस वेद श्रुति के अनुसार जीव में भक्तिद्वारा आनन्द अंश अभिव्यक्त होते ही अनेक ब्रह्माण्ड जीव में प्रतीत हो जाते हैं और परिक्षेद और व्यापकता दोनों जीव में सम्भव हो जाते हैं। इसमें सत्, चित्, आनन्द से तीन गुण मुख्य रूप से विद्यमान हैं। ये तीनों गुण उन पूर्ण रूप में हैं जीनकी कोई सीमा नहीं है असीमित रूप में उनकी गणना नहीं की जा सकती है, जड़ जगत की सृष्टि करते हैं। जड़ जगत में सत् गुण का प्राधान्य है और चित् तथा आनन्द गुण तिरोहित हैं।

परब्रह्म के तीन स्वरूप हैं:– 1. अक्षर ब्रह्म 2. चित् सृष्टि 3. जड़ जगत। अक्षर ब्रह्म उनका परम धाम है जो उन्हीं का स्वरूप हैं

किन्तु उसमं ये तीनों गुण सत्, चित्, आनन्द सीमित है, उनकी गणना की गई है।

प्राकृतः सकतला देवा गणितानन्दकं बृहत्।
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात् कृष्ण एव गतिमंम।।[8]

अर्थ– ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता भगवान् को व्यक्ति माया के वशीभूत होने से प्राकृत हैं– प्रकृति के तीन गुण– मन, रज, तन से युक्त हैं। वृहत् अर्थात् अक्षय ब्रह्म के आनन्द की भी अवधि है, सीमा है, इसलिए अगणित आनन्द वाले और भक्तों के सब दुख दूर करने वाले श्री कृष्ण मेरे रक्षक हैं।

अक्षर ब्रह्म, परब्रह्म श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक स्वरूप है। भक्ति रहित मात्र ज्ञान योग द्वारा अक्षयब्रह्म की प्राप्ति होती है। अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जीव सृष्टि एवं जड़ जगत सृष्टि परब्रह्म श्रीकृष्ण का ही आधिभौतिक स्वरूप है।

सृष्टि रचना विषयक कुछेक अन्य मत– श्री वल्लभ द्वारा मान्य 'ब्रह्मवाद' प्रकरण में संक्षिप्ततः यह भी इंगित कर देना आवाश्यक है कि नैय्यायिक मतावलम्बी परमाणु को, सांख्यवादी प्रकृति को तथा मायावादी माया को जगत का समवायि कारण (उपादान कारण) मानते हैं। यह श्री वल्लभ को स्वीकार्य नहीं। श्री वल्लभ के अुसार यह सब जड़कारणवाद बनता है, चेतन कारणवाद ही नहीं बनता और मात्र जड़ से सृष्टि –रचना संभव नहीं, चेतन से ही संभव है। जड़ में क्रिया शक्ति नहीं होती।

आविर्भाव तिरोभाव सिद्धान्त – श्री वल्लभ आविर्भाव और तिरोभाव को भी भगवद् शक्तियाँ मानते हैं और भगवान् अपनी इन शक्तियों के कारण ही जगत का आविर्भाव और तिरोभाव करते हैं। श्री वल्लभ उत्पत्ति और विनाश शब्द के प्रयोग से सहमत नहीं। उत्पत्ति उस वस्तु की होती है जो उससे पूर्व किसी भी रूप में नहीं थी। विनाश होने पर वस्तु का अस्तित्व बिल्कुल ही समाप्त हो जाता है। विनाश के उपरान्त वह वस्तु किसी भी रूप में अवस्थित नहीं रहती। अतः श्री वल्लभ को 'आविर्भाव तिरोभाव', सिद्धान्त ही प्रिय और युक्त लगता है। श्री बल्लभाचार्य का यह तर्क उचित लगता है क्योंकि हम जगत में स्पष्टतः देखते हैं– किसी भी वस्तु का पूर्णतः नाश तो होता नहीं, उसका रूपान्तर ही होता है। कंडा जलकर भस्म रूप में ही परिवर्तित होता है आदि।

संदर्भ

1. श्रीमद्भागवत् स्कन्ध 10 अध्याय–40 श्लोक–55
2. श्रीमद्भागवत् के दसवें स्कंध अध्याय 12 से 14
3. श्रीमद्भागवत् के 12 वें अध्याय में श्लोक 16
4. श्रीमद्भागवत् अध्याय– 7, श्लोक 6
5. श्रीमद्भागवत् 7/19
6. श्रीमद्भागवत् 4/24
7. भगवत्गीता के अध्याय 15 श्लोक 7
8. श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के ग्रंथ 'श्रीकृष्णाश्रय' में श्लोक 8